SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति एवं नालंदा विश्वविद्यालय

प्रीति कुमारी, शोधार्थी, इतिहास विभाग
अशोक कुमार मंडल, (Ph.D.), इतिहास विभाग
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
प्रीति कुमारी
अशोक कुमार मंडल (Ph.D.)

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 08/05/2023
Revised on : -----
Accepted on : 15/05/2023
Plagiarism : 03% on 08/05/2023

Plagiarism Checker X - Report
Originality Assessment
Overall Similarity: **3%**
Date: May 8, 2023
Statistics: 84 words Plagiarized / 3013 Total words
Remarks: Low similarity detected, check with your supervisor if changes are required.

शोध सार

भारतीय इतिहास में प्राचीन काल से ही शिक्षा को महत्व दिया गया है। हम यह कह सकते हैं कि भारत में जब से मानव सभ्यता का विकास हुआ तब से शिक्षा मानव जीवन का एक अभिन्न अंग की तरह है। प्रारंभ में शिक्षा का स्वरूप वर्तमान से कुछ भिन्न था। साहित्यिक रूप से शिक्षा का प्रारंभ वैदिक काल से माना जाता है। उस समय शिक्षा प्राप्त करने हेतु किसी बड़े शैक्षणिक संस्थाओं का उल्लेख नहीं मिलता। वैदिक काल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी किसी एकांत स्थान पर पेड़ के नीचे अपने गुरु के सांनिध्य में शिक्षा प्राप्त करते थे। धीरे–धीरे आश्रम एवं गुरुकुल व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। बौद्ध धर्म की स्थापना के बाद मठ, विहार एवं संघ की स्थापना होने लगी और यही मठ एवं विहार विकसित होकर बड़े विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध हुए। इन्हीं शैक्षणिक संस्थाओं में प्राचीन भारतीय नालंदा विश्वविद्यालय का भी एक महत्वपूर्ण स्थान था। यह भारत का प्रथम आवासीय विश्वविद्यालय था जहाँ केवल भारत के ही नहीं बल्कि चीन, तिब्बत, नेपाल, कोरिया आदि देशों से भी छात्र शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग जिसने इस महाविहार में रहकर अध्ययन–अध्यापन का कार्य किया और अपने यात्रा वृतांत में इस विश्वविद्यालय का आंखों देखा वर्णन किया और जिसकी पुष्टि वर्तमान पुरातात्विक साक्ष्यों से भी होती है। यहाँ के प्रमुख विद्वानों मे शीलभद्र, धर्मपाल, गुणमति, स्थिरमति चंद्रपाल,प्रभामित्र, जिनमित्र आदि थे जिनकी विद्वता की ख्याति केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी थी। परंतु दुर्भाग्यवश इस विश्वप्रसिद्ध विश्वविधालय को 12 वीं शताब्दी में मुस्लिम आक्रमकारी बख्तियार खिलजी द्वारा नष्ट कर दिया गया जिससे भारतीय ज्ञान–विज्ञान की काफी क्षति हुई। आज भारत में अनेक विश्वविद्यालयों की

स्थापना हो चुकी है लेकिन उन्हें वो प्रसिद्धि नहीं मिल पाई है जो आज से लगभग 15 सौ वर्ष पूर्व नालंदा विश्वविद्यालय को प्राप्त थी। अतः इस शोध आलेख के माध्यम से प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में नालंदा विश्वविद्यालय के महत्व को उजागर करनें का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द

गुरुकुल, वैदिक, प्रवज्या, तक्षशिला, नालंदा, उपनयन.

विषय वस्तु

भारत में शिक्षा का महत्व वैदिक काल से ही रहा है, शिक्षा व्यक्ति को प्रकृति से संस्कृति की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया है। आरंभिक समय में शिक्षा औपचारिक न होकर संस्कृति की एक अंतर्निहित अंग थी। तब शिक्षा आदिम जनों के बीच लोगों के समूह रहने बसने और जीवन जीने की पारस्परिक पद्धति एवं उससे उपलब्ध अनुभव का सांस्कृतिक नाम था। जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता गया जीवन जटिल से जटिलतर होता गया और जीवन तथा जगत से संबंधित ज्ञान की आवश्यकता और विविधता भी बढ़ती गई, परिणामस्वरूप शिक्षा के अंतर्गत शिक्षक शिक्षार्थी पाठ्यक्रम प्रविधि संस्था आदि का समावेश हुआ। इस प्रकार प्रारंभ में शिक्षा का स्वरूप वर्तमान से भिन्न था। साहित्यिक रूप से शिक्षा का प्रारंभ वैदिक काल से माना जाता है। उस समय शिक्षा का स्वरूप धार्मिक था। लोगों का मानना था कि जो व्यक्ति शिक्षा प्राप्त नहीं करेगा अर्थात् जो वेदों का अध्ययन नहीं करेगा उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। इस प्रकार भारत में प्राचीनकाल से ही शिक्षा प्राप्त करने पर विशेष ज़ोर दिया गया है। महाभारत में वर्णित है कि विद्या के समान नेत्र तथा सत्य के समान तप कोई दूसरा नहीं है (नास्ति विधासमं चक्षुनास्ति सत्यसंम तपः)। इसे मोक्ष का साधन माना गया है (सा विधा या विमुक्ते)।[1] उस समय भी शिक्षा के महत्त्व को बदलाते हुए यह कहा गया कि अगर ब्राह्मण भी यदि विद्या रहित है तो वह भी शूद्र के समान ही है।[2] प्राचीन भारतीयों की दृष्टि में शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास का साधन थी। शिक्षा का उद्देश्य केवल आजीविका के लिए उत्तम साधन प्राप्त करना ही नहीं बल्कि आजीविका के साथ–साथ व्यक्ति के चरित्र निर्माण, संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसार व्यक्ति को उनके कर्तव्यों से बोध कराना तथा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास भी था।

शोध प्रविधि

इस शोध आलेख में विशलेषणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। साथ ही शोध आलेखों, पुस्तकों एवं इन्टरनेट का कुशलता से प्रयोग किया गया है। वस्तुतः यह शोध आलेख द्वितियक श्रोतों पर आधारित है।

वैदिक काल में शिक्षा व्यवस्था गुरुकुल पद्धति पर आधारित था। विद्यार्थी अपने घरों से दूर गुरु के निवास स्थान पर रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करते ही विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करना प्रारंभ करते थे। गुरु के आश्रम में पहुंचने के बाद विद्यार्थियों का उपनयन संस्कार किया जाता था, जिसके पश्चात ही अध्ययन कार्य प्रारंभ होता था। धर्मग्रंथों में भी कहा गया है कि विद्यार्थी उपनयन संस्कार के साथ ही गुरुकुल में निवास करें तथा विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करें।[3] गुरु के सांनिध्य में रहते हुए विद्यार्थी उसके परिवार का एक सदस्य हो जाता था तथा गुरु उसके साथ पुत्र के समान व्यवहार करते थे। गुरुकुल में ब्रह्मचर्य पूर्वक रहते हुए विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। गुरुकुल में विद्यार्थियों को गुरु द्वारा बनाए गए कुछ दैनिक नियमों का पालन भी करना पड़ता था। गुरु की सेवा करना उसका परम कर्तव्य होता था। उसके बदले में गुरु व्यक्तिगत रूप से भी अपने शिष्य का ध्यान रखते थे। इस प्रकार गुरुकुल पद्धति में गुरु के चरित्र तथा आचरण का विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव पड़ता था, जिससे उसमें आत्मनिर्भरता की भावना का विकास होता था। प्राचीन साहित्य में ऐसे अनेक आचार्य कुलों का वर्णन मिलता है जहाँ अनेक विद्यार्थियों ने शिक्षा प्राप्त की थी। छान्दोग्य उपनिषद से पता चलता है कि उद्धलक आरुणी के पुत्र श्वेतकेतु ने गुरुकुल में रहकर शिक्षा प्राप्त की थी।[4] इसी प्रकार विष्णुपुराण से ज्ञात होता है कि कृष्ण एवं बलराम ने संदीपनी मुनि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। रामायण में भारद्वाज तथा वाल्मीकि के गुरुकुलो का वर्णन

होता है। महाभारत में भी कण्व तथा मार्कंडेय ऋषि के आश्रम अध्ययन कार्य के लिए प्रसिद्ध थे। मौर्य वंश के संस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य ने भी तक्षशिला में अपने गुरु चाणक्य के साथ रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। गुप्तकाल में भी ब्राह्मणों को जो भूमि दान दिया जाता था उसे अग्रहार कहा जाता था, ये अग्रहार भी शिक्षा के प्रमुख केंद्र थे। हर्ष चरित्र में भी गुरुकुल पद्धति का उल्लेख होता है। अलबरूनी ने भी पूर्व मध्यकाल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरुकुलो का उल्लेख किया है।[5]

इस प्रकार प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था गुरुकुल प्रणाली पर आधारित थी। ये गुरुकुल किसी संस्था या राजा के अधीन नहीं होते थे बल्कि ये गुरु के द्वारा व्यक्तिगत रूप से संचालित होते थे। वहीं बौद्ध धर्म की स्थापना के बाद भारत में मठों एवं विहारों की स्थापना होने लगी। ये मठ या बिहार राजकीय संरक्षण या संघ के द्वारा संचालित होते थे। बौद्ध मठों की स्थापना के बाद मठ एवं विहार ही प्रमुख शिक्षा के केंद्र बन गए। बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत केवल संघ के भिक्षुओं को ही धार्मिक तथा सांसारिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। भिक्षुओं के अतिरिक्त अन्य लोगों को शिक्षा देने का अधिकार संघ को प्राप्त नहीं था। शिक्षा प्राप्त करने के लिए बौद्ध मठ अथवा संघ में प्रवेश करने के लिए विद्यार्थियों के लिए विशेष नियम होते थे जिस प्रकार ब्रह्माणीय शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी का गुरुकुल में प्रवेश करने से पहले उपनयन संस्कार होता था, उसी प्रकार बौद्ध मठ अथवा संघ में प्रवेश करने की प्रक्रिया को पब्बजा या प्रवज्जया कहा जाता था।[6] जब भावी भिक्षु शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने पारिवारिक संबंध का त्याग करते थे और मठ में प्रवेश करते थे उसे प्रवज्जया कहा जाता था। संघ में प्रवेश करने के बाद उनका कोई वर्ण नहीं रह जाता था। सभी को समान माना जाता था। प्रवज्या ग्रहण करते समय उनकी आयु आठ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए थी। आठ से 12 वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् 20 वर्ष की आयु में वह उपसंपदा संस्कार ग्रहण करता था, जिसके बाद वह संघ का पूरी तरह से सदस्य बन जाता था। इस प्रकार उपसंपदा के बाद भिक्षुओं का गृहस्थी अथवा सांसारिक बंधनों से कोई संबंध नहीं रह जाता था। उपसम्पदा के संपादन की विधि प्रवजजया से भिन्न होती थी। संघ के सदस्यों के बहुमत द्वारा कोई भिक्षु उपसंपदा ग्रहण करके समस्त जीवन के लिए संघ का स्थायी सदस्य बन जाता था।[7] संघ में गुरु एवं शिष्य एक दूसरे के प्रति आपने कर्तव्यों का निर्वहन करते थे। गुरु एवं शिष्य का संबंध स्नेहपूर्ण होता था। बौद्ध शिक्षा पद्धति में आचरण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। प्रारंभिक शिक्षा में धार्मिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध मठों एवं विहारों की स्थापना के बाद हीनयान एवं महायान बौद्ध ग्रंथों को शिक्षा के पाठ्यविषय में शामिल किया गया।[8] बौद्ध मठों में भी शिक्षण पद्धति मौखिक रूप से ही दी जाती थी। वाद–विवाद द्वारा भी विभिन्न समस्याओं का समाधान किया जाता था।

इस प्रकार बौद्ध धर्म की स्थापना के बाद बौद्ध मठों एवं विहारों में अध्ययन कार्य होने लगा और यही बौद्ध मठ एवं विहार विकसित होकर बड़े विश्वविद्यालयों के रूप में स्थापित हुए तथा वैश्विक स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त की। इन्ही विश्वविद्यालयों में नालंदा विश्वविद्यालय का नाम भी विश्वविख्यात था। यह प्रारंभ में एक बौद्ध मठ था जिसकी स्थापना सम्राट अशोक के समय में किया गया था।[9] आगे चलकर गुप्त काल में विभिन्न शासकों के योगदानों एवं संरक्षण से इसका विकास होता गया और विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना का श्रेय गुप्त वंश के शासक कुमारगुप्त प्रथम (शकरादित्य) (415–455) ई. को दिया जाता है।[10] यह वर्तमान समय में आधुनिक बिहार राज्य के बड़गांव जिले मे स्थित था। नालंदा विश्वविद्यालय को केवल भारत का ही नहीं बल्कि विश्व का प्रथम आवासीय विश्वविद्यालय होने का गौरव प्राप्त है। नालंदा विश्वविद्यालय के नामकरण को लेकर काफी विवाद है, कि इस शिक्षा केंद्र का नाम नालंदा क्यों रखा गया। एक मान्यता के अनुसार ऐसा कहा गया है की नालंदा का नामकरण इसी नाम के एक नाग के नाम पर किया गया जो नालंदा संघाराम के दक्षिण में स्थित एक तालाब में रहता था।[11] किन्तु प्रसिद्ध चीनी यात्री हवेनसांग ने जातक कथाओं के अनुसार माना है की बुद्ध पूर्व जन्म में बोधिसत्व के रूप में यहाँ के राजा थे और वे इतने उदार तथा दानी थे कि कभी भी किसी को दान देने से इंकार नहीं करते थे। इस प्रकार नालंदा का एक अर्थ अनवरत दान देने वाला भी होता है (न आलम दा) इसी कारण इस जगह का नाम नालंदा हो गया।[12] हीरानंद शास्त्री के अनुसार यहाँ पर सरोवरों की अधिकता थी जिसमे कमलनाल अधिक मात्रा में पाए जाते थे और इसी कारण इस स्थान का नाम नालंदा

(नालम ददाती इति नालंदा) प्रसिद्ध हो गया। तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ के अनुसार नालंदा का महत्व सम्राट अशोक के समय से ही था। उसने प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु सारिपुत्र के निर्वाण स्थान पर बौद्ध स्तूप का निर्माण करवाया था। दूसरी शताब्दी ई पू में प्रसिद्ध दार्शनिक तथा रसायनज्ञ नागार्जुन ने यहाँ पर शिक्षा प्राप्त की थी। उनके ही समकालीन सुविष्णु नामक एक ब्राह्मण ने 108 मंदिरों का निर्माण करवाया था।[13] नागार्जुन के शिष्य आर्यदेव ने भी नालंदा में समय व्यतीत किया था। इस प्रकार इस स्थान का महत्व तो काफी पहले से ही था, लेकिन छठी शताब्दी ई में यह अपने प्रसिद्धि के चरम सीमा पर था।

प्रसिद्ध चीनी यात्री हवेनसांग जिसने छठी शताब्दी में भारत की यात्रा की थी। उसने इस विश्वविद्यालय का आँखों देखा वर्णन अपनी यात्रा वृतांत में किया है। हवेनसांग के समय मे यहाँ विद्यार्थियों की संख्या लगभग 10,000 थी जिन्हें 1510 शिक्षक पढ़ाते थे। इन शिक्षकों में एक हज़ार ऐसे थे जो सूत्रों एवं शास्त्रों के 20 संग्रह के ज्ञाता थे, 500 व्यक्ति ऐसे थे जो 30 संग्रहों को पढ़ा सकते थे तथा 10 ऐसे थे जो 50 संग्रहों की व्याख्या कर सकते थे।[14] इन सभी में शीलभद्र एकमात्र ऐसे थे जो इन सभी संग्रहों के ज्ञाता थे। हवेनसांग स्वयं इस विश्वविद्यालय में 18 महीनों तक रहकर अध्ययन–अध्यापन का कार्य किया था, तथा शीलभद्र से शिक्षा प्राप्त की थी। वे इस विश्वविद्यालय के कुलपति थे। इससे पहले धर्मपाल यहाँ के कुलपति थे। हवेनसांग के विवरण से ही स्पष्ट होता है कि यहाँ शिक्षक तथा विद्यार्थियों का अनुपात 1:5 का था अर्थात् एक अध्यापक पांच या छह विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी पर शिक्षक व्यक्तिगत तौर पर ध्यान देते थे तथा छात्रों को भी वाद–विवाद करने का पूरा अवसर मिल जाता था। यहाँ प्रत्येक दिन लगभग 100 व्याख्यान होता था। यहाँ का पाठ्यक्रम काफी विस्तृत था। यहाँ बौद्ध धर्म के महायान तथा उससे संबंधित 18 अंगो के अतिरिक्त वेद, वेदांग उपनिषद्, हेतु विद्या, शब्दविद्या, चिकित्साशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, योग आदि सभी विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी।[15] विश्वविद्यालय में रहने के लिए छात्रावास की भी सुविधा थी। छात्रों को भोजन, वस्त्र तथा अन्य उपयोगी वस्तुएं मुफ्त में उपलब्ध कराई जाती थी। यहाँ खुदाई में प्राप्त अवशेषों से प्रमाणित होता है कि यहाँ कुल 13 महाविहार थे जहाँ छात्रों के रहने के लिए अनेक कमरे बने हुए थे। प्रत्येक छात्रावास में कुआं बना हुआ था तथा कमरे में किताबें रखने के लिए आलें बने हुए थे। व्याख्यान के लिए 300 कक्ष बने हुए थे यहाँ एक विशाल पुस्तकालय भी बना हुआ था जिसे धर्मगंज कहा जाता था। इसमें तीन भवन थे और यह नौ मंजिला था जिसे रत्न सागर, रत्नोंदधि तथा रत्नरंजक कहा गया है।[16] तीनों इमारतों का प्रारंभ रत्न शब्द से होता है जो कि बौद्ध धर्म के तीन रत्न बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रतीक थे। इस विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए प्रवेश परीक्षा देनी होती थी जो बहुत ही कठिन होती थी। प्रवेश परीक्षा में केवल दस में से दो या तीन ही छात्र सफल हो पाते थे जिससे यह पता चलता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास में नालंदा विश्वविद्यालय का क्या महत्त्व था। यहाँ केवल भारत ही नहीं बल्कि चीन, जापान नेपाल, कोरिया, जावा, सुमात्रा आदि से भी छात्र शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। ह्वेनसांग ने अपने विवरण में लिखा है कि बहुत से विदेशी विद्वान यहाँ अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए आते थे तथा नालंदा के आचार्य से वाद–विवाद करते थे। यहाँ से शिक्षा प्राप्त कर वापस लौटने पर विद्वानो का बड़ा आदर होता था। यहाँ के प्रमुख आचार्यों में धर्मपाल, शीलभद्र, चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, शांत रक्षित चंद्रगोमिन्, बुद्ध ज्ञान पाद, पद्मसंभव आदि प्रमुख थे जिनकी विद्वता की ख्याति केवल भारत ही नहीं बल्कि विदेशों में भी विख्यात थी।[17] इनकी विद्वता से प्रभावित होकर विदेशी छात्र भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए ललायित रहते थे। नालंदा से प्राप्त दो ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि जावा के शासक बालपुत्रदेव के कहने पर तत्कालीन पाल शासक देवपाल ने विश्वविद्यालय के खर्च के लिए पांच गांव दान में दिए थे। इन गांवों के नाम नंदिबनाक, मनीवाटक, नाटिका, हस्तीग्राम और पालामक थे।[18] देवपाल के घोंसरवाँ अभिलेख से ज्ञात होता है कि देवपाल ने वीर देव नामक एक ब्राह्मण को नालंदा के देखभाल के लिए नियुक्त किया था। इस प्रकार इस विश्वविद्यालय को तत्कालीन शासकों के संरक्षण एवं सहयोग के साथ–साथ विदेशी शासकों का सहयोग भी प्राप्त था जिससे यहाँ का आर्थिक प्रशासन काफी अच्छे से चलता था।

परंतु दुर्भाग्यवश भारत के इस सांस्कृतिक धरोहर, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक केंद्र जो प्राचीन भारत का गौरव था उसे भी मुस्लिम आक्रमणकारियों का प्रहार झेलना पड़ा। मुस्लिम आक्रमणकारी मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी

1203 ई मे इस शैक्षणिक केंद को ध्वस्त कर दिया और इसके विशाल पुस्तकालय को जला डाला जिसका उल्लेख मिनहाज उस सिराज लिखित तबकात–ए–नासिरी में मिलता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार विभिन्न अभिलेखों साहित्यिक स्रोतों विदेशी यात्रियों के विवरणों तथा प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों से यह प्रमाणित होता है कि इस विश्वविद्यालय का क्या महत्व था। इस विश्वविद्यालय के शैक्षणिक व्यवस्था, पाठ्यक्रम,प्रशासनिक व्यवस्था, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के महत्व के बारे में जितनी प्रशंसा की जाये उतनी कम है। आज भारत में वर्तमान समय में अगर देखा जाय तो प्राचीन काल की तरह ही शिक्षा को महत्व दिया गया है। शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना भी हो चुकी है, परंतु अगर वैश्विक स्तर पर देखा जाय तो आज भारत के एक भी शैक्षणिक संस्थाओं को वो प्रसिद्धि नहीं प्राप्त है जो आज से लगभग 15 सौ वर्ष पहले नालंदा जैसे शैक्षणिक केंद्रों को प्राप्त था।

संदर्भ सूची

1. श्रीवास्तव के. सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पंद्रहवी आवृत्ति, 2019–20 पृष्ठ सं. – 762।
2. रावत प्यारेलाल, *प्राचीन व भारतीय शिक्षा,* भारत पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ सं. 44।
3. अल्टेकर अनन्त सदाशिव, *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,* सुविचार प्रकाशन मंडल लिमिटेड, नागपुर, 1935, पृष्ठ संख्या 5।
4. प्रसाद मुनेश्वर, *भारतीय शिक्षा का इतिहास,* अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना, 1958 पृष्ठ सं. 32।
5. मजूमदार एन. एन., *ए हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन एनशिएन्ट इंडिया,* पृष्ठ सं – 98।
6. मिश्रा जयशंकर, *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी,पटना, 2012, पृष्ठ सं–538।
7. प्रसाद मुनेश्वर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ सं. –119।
8. श्रीवास्तव के. सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* पूर्वोद्धृत, पृष्ठ सं. – 767।
9. वाकिफ मोहम्मद, प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति (प्राचीन काल से 12 वी शताब्दी तक), शोध प्रबंध, बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी, उत्तर प्रदेश, 2006, पृष्ठ संख्या 165।
10. मुखर्जी राधा कुमुद, *एनसिएन्ट इंडियन एजुकेशन : ब्रह्मणिकल एण्ड बुद्धिष्ठ,* मोतीलाल बनरसीदास प्रकाशन, दिल्ली, 2011 पृष्ठ सं – 557।
11. एस बील बुद्धिस्ट रिकार्ड ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड लंदन भाग 2 पृष्ठ सं 169।
12. एच डी संकलिया दी यूनिवर्सिटी ऑफ नालंदा पृष्ठ सं 39।
13. लामा तारानाथ, भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास अनु रिगजीन लूनडुप लामा के पी जायसवाल शोध संस्थान पटना 1971 पृ सं 39।
14. मिश्रा जयशंकर, *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृष्ठ सं . – 541।
15. मजूमदार रमेश चंद्र, *प्राचीन भारत,* मोतीलाल बनरसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ सं 402।
16. सिंहा विपिन बिहारी, *प्राचीन भारत का इतिहास,* ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ सं 341।
17. मुखर्जी राधा कुमुद, *एनसिएन्ट इंडियन एजुकेशन :ब्रह्मणिकल एण्ड बुद्धिष्ठ,* पूर्वोद्धृत, पृष्ठ सं. – 566।
18. संकलिया एच. डी., दी यूनिवर्सिटी ऑफ नालंदा, पृष्ठ सं. 68।

****